गुमशुदा इतिहास की तलाश

डॉ. शिवानी जॉर्ज
असोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग
श्यामा प्रसाद मुखर्जी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
ई-मेल: agsg1441@gmail.com

सार

इतिहास क्या है - अतीत की घटनाओं का संकलन भर या किसी काल-खंड के प्रत्येक स्पंदन का परिचायक ? इतिहास से अपेक्षा की जाती है कि उसके माध्यम से समय के आईने में हर घटना का तटस्थ चित्र प्रतिबिंबित हो | न जाने अतीत के गर्भ में क्या-क्या रहस्य छिपे होंगे जिनको इतिहास की किताबों में अंकित नहीं किया गया, अगर किया भी गया तो आधा-अधूरा या फिर बड़े हलके या भ्रामक रंगों में | सन 1919 में घटित जलियांवाला बाग की घटना भारतीय इतिहास के सन्दर्भ में बहुत महत्वपूर्ण है | परन्तु कमान्डेंट स्टोक्ले नामक ब्रिटिश सेना के एक अधिकारी ने जनरल डायर से बहुत पहले जलियांवाला कांड सरीखी नृशंस घटना को अंजाम दिया था | यह घटना सन 1913 के 'मानगढ़ बलिदान' की है जिसमे जलियांवाला बाग से कहीं अधिक लोग मारे गए थे |

आदिवासी अस्मिता से जुडी इस ऐतिहासिक बलिदानी घटना को आधार बनाकर प्रसिद्ध रचनाकार श्री हरिराम मीणा ने 'धूणी तपे तीर' नामक एक उपन्यास लिखा है, जिसके केंद्र में है आदिवासी समुदाय का संघर्ष और उनके हक की लड़ाई । यह रचना इस बात की गवाही देती है कि तथाकथित 'मुख्यधारा' के द्वारा हाशिए के प्रश्नों और उनके संघर्षों का किस प्रकार हाशियाकरण किया जाता रहा है | 'धूणी तपे तीर' के मुखपृष्ठ पर दर्ज पहली पंक्ति है – 'आदिवासी जलियांवाला कांड', मानो लेखक यह बताना चाह रहा हो कि जलियांवाला बाग कांड से पहले भी ऐसी एक बड़ी घटना हो चुकी थी, जिसको इतिहास ने नज़रंदाज़ कर दिया | प्रस्तुत आलेख में 'धूणी तपे तीर' के माध्यम से उन खोयी हुई आवाजों की अनुगूंज को सुनने का प्रयास किया गया है | यह आलेख एक आदिम जीवन-शैली के क्रमिक क्षरण और शोषण की परतों को उजागर करता है |

परिचय

इतिहास लेखन 'तलवार की धार पर चलने' जैसा कार्य है | लेकिन हमने यह भी सुना है कि इतिहास बहुधा विजेताओं के दृष्टिकोण से लिखा/लिखवाया जाता है | न जाने अतीत के गर्भ में क्या-क्या रहस्य

छिपे होंगे जिनको इतिहास की किताबों में अंकित नहीं किया गया, अगर किया भी गया तो आधा-अधूरा या फिर बड़े हलके या भ्रामक रंगों में |

सन 1919 में घटित जलियांवाला बाग की घटना ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता का यह सर्वाधिक दमनकारी रूप था जिसकी विश्व भर ने कड़ी निंदा की | जनरल डायर की क्रूर छवि हमारे हृदय-पट पर अंकित हो गयी | लेकिन क्या आपने किसी कमान्डेंट स्टोक्ले का नाम भी इसी प्रकार की अमानवीयता के प्रसंग में सुना है ? कमान्डेंट स्टोक्ले, ब्रिटिश सेना का एक ऐसा अधिकारी, जिसने जनरल डायर से बहुत पहले जलियांवाला कांड सरीखी नृशंस घटना को अंजाम दिया था; लेकिन यह घटना चूंकि हाशिये के समाज से सम्बंधित थी, इतिहास ने इसके सत्यांकन/तथ्यांकन में जलियांवाला बाग जैसी तत्परता न दिखाई | सन 1913 के 'मानगढ़ बलिदान' की आदिवासी अस्मिता से जुडी इस ऐतिहासिक बलिदानी घटना को आधार बनाकर प्रसिद्ध रचनाकार श्री हरिराम मीणा ने 'धूणी तपे तीर' नामक एक उपन्यास लिखा है, जिसके केंद्र में है आदिवासी समुदाय का संघर्ष, उनके जीवट और हक की लड़ाई । ब्रिटिशकालीन भारत में आदिवासियों पर हो रहे अत्याचारों और उनके आंदोलनों पर उन्होंने विशेष शोध किया है ।

मानव समाज बहुस्तरीय होता है | भाषा-बोली, वर्ग-वर्ण, जाति-नस्ल आदि आधारों पर वर्चस्व की टकराहटें समाज में सदा से होती आई हैं | विश्व के अनेकानेक देशों में निवास करने वाले आदिवासियों को मूल निवासी, वनवासी, एबोरिजिनल, ट्राइबल आदि संज्ञाओं से अभिहित किया जाता रहा है| विश्व भर के आदिवासी समुदाय अपनी विशिष्ट और स्वायत्त जीवन शैली के लिए जाने जाते हैं – चाहे वे भारत के आदिवासी हों या नेटिव अमरीकी समुदाय |आदिवासी समाज में 'व्यष्टि' के स्थान पर 'समष्टि' को अधिक महत्व दिया जाता है |सहजीविता और सह-अस्तित्व का भाव इस समाज के जीवन-दर्शन का मूल तत्व है परन्तु बाह्य तत्वों के हस्तक्षेप से उनका नैसर्गिक जीवन क्षरित होने लगा| दसवीं से बारहवीं सदी के अंतराल में राजपूत विजेताओं ने आदिवासी जीवन में हस्तक्षेप किया| आदिवासी समुदायों के समक्ष अनेक समस्याएँ आईं परतु जंगल का आश्रय अब तक बरक़रार था| भारत के आदिवासी अंचल प्राकृतिक सम्पदा संपन्न है, जिनके दोहन की नीति के तहत कंपनी-राज और ब्रिटिश-राज के दौरान इन अंचलों में अन्यायपूर्ण दखल दिया जाता रहा| इस कारण इन समुदायों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगा| इससे उत्पन्न असंतोष की सुगबुगाहटें हमें विभिन्न आदिवासी विद्रोह-गाथाओं में दिखाई देती हैं | बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में दक्षिणी राजस्थान के भील और मीणा बहुल आदिवासी अंचलों में भी ऐसा ही असंतोष गहराता जा रहा था |

1913 के मानगढ़ बलिदान की घटना इतिहास के पन्नों से प्रायः सौ वर्षों तक ओझल रही या इसका अंकन बड़े ही हलके रंगों में किया गया | पश्चिमी भारत के आदिवासी संघर्षों की श्रंखला में

मानगढ़ संघर्ष अत्यंत महत्वपूर्ण है । ब्रिटिश-राज और रजवाड़ों की शोषणपरक नीतियों के कारण समुदाय के भीतर लम्बे अरसे से गहरा रोष था | गोविन्द गुरु के आह्वान पर सन 1913 को मार्गशीर्ष पूर्णिमा के अवसर पर इलाके के आदिवासी मानगढ़ पहाड़ी पर एकजुट हुए थे | सामूहिक आयोजन या स्थानीय मेले विचार-विनिमय का अवसर भी प्रदान करते हैं| बांसवाडा, प्रतापगढ़, डूंगरपुर, उदयपुर, कुशलगढ़, संतरामपुर आदि के रहवासी आदिवासीजन अपनी पारंपरिक वेशभूषा में, पारंपरिक हथियारों – तीर -धनुष आदि के साथ यहाँ आये थे | जिस तरह जलियांवाला बाग में जनरल डायर ने निहत्थे लोगों पर बंदूकों के मुंह खोल देने का आदेश दिया था, ठीक उसी तरह मानगढ़ पहाड़ी पर कमान्डेंट स्टोक्ले के आदेश से भीषण नरसंहार हुआ | बकौल श्री हरिराम मीणा, "कमान्डेंट आई.पी.स्टोक्ले की अगुवाई में मेवाड़ भील कोर की दो, राजपूत रेजिमेंट व जाट रेजिमेंट की एक-एक कंपनियों की फ़ौज ने पहाड़ के दक्षिणी उठान पर चुपचाप चढ़कर बिना किसी चेतावनी के आदिवासियों पर बंदूकों और मशीनगनों से हमला बोल दिया| आदिवासियों ने भी अपने परंपरागत हथियारों से जमकर लोहा लिया लेकिन फ़ौज के विकसित शस्त्रास्त्रों से वे कहाँ तक लड़ते ! घडी भर में लाशों का ढेर लग गया |"[i]

इस रचना का आधार ऐतिहासिक साक्ष्य हैं | 17 नवम्बर 1913 को गोविन्द गुरु के नेतृत्व में आदिवासियों ने कोई विकल्प शेष न रहने पर राजस्थान के बांसवाडा जिले के मानगढ़ पहाडी पर संघर्ष किया जिसमे प्रायः 1500 आदिवासी सूरमा खेत रहे| देश के इतिहास में सामंती और औपनिवेशिक शक्तियों से लोहा लेने वाला यह अपनी तरह का अनूठा बलिदानी संघर्ष था, जिसके विषय में लोग कम ही जानते हैं | 'धूणी तपे तीर' के मुखपृष्ठ पर दर्ज पहली पंक्ति है – 'आदिवासी जलियांवाला कांड' , मानो लेखक यह बताना चाह रहा हो कि जलियांवाला बाग कांड, यानी 1919 से पहले भी ऐसी एक बड़ी घटना हो चुकी थी जिसको इतिहास के पन्नों में दर्ज करने में कोताही बरती गई । वे लिखते हैं कि "आदिवासी पत्रिका 'अरावली उद्घोष' में मैंने मानगढ़ पर हुए आदिवासी बलिदान के बारे में पढ़ा और मैं दंग रह गया कि राजस्थान का वासी होने के बावजूद मुझे ऐसी घटना की जानकारी नहीं थी ।"[ii] राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा द्वारा इस घटना को औचित्यपूर्ण तरीके से दर्ज न करने पर भी वे कटाक्ष करते हैं —" स्पष्ट है कि मनुष्य के हक की लड़ाई के इतिहास को मनुष्य विरोधी शोषक-शासकों ने दबाया है और उनके आश्रय में पलने वाले इतिहासकारों ने उनका साथ दिया है ।"[iii] अन्य शब्दों में कहें तो हाशिये के इतिहास को इतिहास के हाशिये पर धकेल दिया गया|

मानगढ़ संघर्ष में जलियांवाला बाग से कई गुना अधिक शहादत हुई थी । गहरे शोध के उपरांत मीणा जी लिखते हैं कि "मृतकों के आकलन को लेकर मैंने सबसे आधिकारिक प्रमाण यह माना कि जिन

अंग्रेज छावनियों से फौजें रवाना हुई थीं वे कितना गोला बारूद लेकर 'मानगढ़ ऑपरेशन' के लिए चलीं और वापसी में कितना जमा कराया|"[iv]

'धूणी' अर्थात एकजुटता, जागृति एवं चेतना का प्रतीक । उपन्यास के मुख्य पात्र है गोविंद गुरु स्वयं एक गैर आदिवासी हैं, बंजारा समुदाय से जुड़े हुए ; परंतु आदिवासी समाज की रक्त-मज्जा से उनका गहरा परिचय है । लेखक उन्हें टंट्या मामा जैसे आदिवासी सूरमाओं की श्रेणी में देखते हैं । गोविंद गुरू और उनके साथियों द्वारा स्थापित संप-सभाएं समुदाय को मनोबल प्रदान करती थीं, उन्हें संगठित होने का अवसर देती थीं| गुरु की मान्यतानुसार संघर्ष का मार्ग सुधार से होकर ही गुजरेगा । आदिवासी समुदाय अंधविश्वास, जादू-टोना, नशा, अशिक्षा, कुशिक्षा, गृहकलह आदि की गिरफ्त में था| यह सब त्याग कर गुरु उन्हें अच्छी आदतों को अपनाने, साफ-सफाई, नशाबंदी, ध्यान, गृह-कलह से मुक्ति आदि की सीख देते हैं । इलाके के गाँवों-फलियों के निवासी उन्हें बड़ा सम्मान देते थे |

लेखक ने 'मानगढ़' को मानवीकृत कर दिया है । ब्रितानिया सरकार के आगमन ने तो आदिवासियों को देसी रजवाड़ों और अंग्रेजों के शोषण की दोहरी चक्की में पिसने को विवश कर दिया था | उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशकों के राजनीतिक उलट-फेर ने रही-सही कसर भी पूरी कर दी| सामंती ताकतों के साथ साम्राज्यवादी शक्तियां भी अब शोषण-तंत्र में शामिल हो गईं | इन अनाहूत परिवर्तनों को मानगढ़ की मूक दृष्टि परख रही थी| 'मानगढ़' मानो आदिवासियों का पुरखा था ।

आदिवासी रगों में दौड़ता सदियों की प्रताड़ना और शोषणजनित अवसाद का लावा फूट पड़ने की कगार पर था । बेगार, महाजनों की लूट और दोयम दर्जे का मनुष्य माने जाने की पीड़ा को झेलते हुए भी आदिवासी जी रहे थे क्योंकि जंगल अब तक उनसे छिना न था, परंतु ईस्ट इंडिया कंपनी और रजवाड़ों के मध्य जब कूटनीतिक संधियां होने लगीं तो यह संतुलन डगमगाने लगा| अंग्रेज हर बार की तरह इस बार भी दोहरी चल चल रहे थे – रियासतों के भीतर अपने प्रभाव विस्तार के साथ-साथ वे आदिवासियों की जंगल पर आधारित प्राकृतिक जीवन-शैली को नष्ट किए दे रहे थे | रियासतों पर अंकुश कायम करने के लिहाज से ब्रिटिश सरकार नए-नए कानून-कायदे बना रही थी | जंगलात का महकमा कायम हुआ ताकि वनोपज से होने वाली आय साम्राज्यवादी खाते में जाए | इसका सीधा खामियाजा आदिवासी समुदाय को भुगतना पड़ रहा था| अब उनका जीवन और जीविका, दोनों खतरे में थे| बंदोबस्त एवं कृषि कर में वृद्धि, आबकारी नीति, नमक के स्वतंत्र उत्पाद तथा व्यापार पर नियंत्रण आदि अन्य मामले भी आदिवासी हित के विरोध में थे । अंग्रेज जंगलों के भीतर रेल की पटरियाँ बिछाने और शिकारगाह बनाने की योजना भी बना रहे थे जिनमे आदिवासी बेगार खटने पर बाध्य थे | इन सब की प्रतिक्रिया कैसे न होती । एक प्रौढ़ आदिवासी कहता है—"शिकारगाह बनाने के लिए हमसे बेगार करवाई जा रही है । दरबार और उसके मेहमान यहां जिनावर का शिकार करेंगे । लेकिन यह काम

इस मौसम में कराया जा रहा है जब हमारी फसलें कटाई पर हैं ।"[v] यानी एक तो बेगार, और वह भी फसल कटाई के मौसम में, और यह कहानी केवल राजस्थान के आदिवासियों की ही नहीं थी, विश्वभर में कमोबेश यही हालत रहे | आदिवासी भूमि-पुत्र हैं । जल-जंगल और जमीन के सरोकार उनकी अस्मिता-चेतना के केंद्र में है । रेलवे और शिकार के लिए जंगल उजाडने, निरंतर लगान वृद्धि, वनोपज का ठेका देने आदि से उनके भीतर असंतोष बढ़ रहा था| आखिर रेलवे का लाभ किसे मिला, क्या आदिवासियों को ?

श्री मीणा ने एक स्थान पर फुटनोट में कर्नल शावर्स द्वारा लिखी पुस्तक ' द मिसिंग चैप्टर ऑफ द इंडियन म्यूटिनी'[vi] का उल्लेख किया है जिसके आधार पर वे बताते हैं कि 1857 के गदर के दौरान नीमच और देवली छावनी के आदिवासी सिपाहियों ने बगावत कर दी थी | समय के साथ दमन-चक्र सघन होता गया और आदिवासियों का संताप भी | राज्य के महारावल पद-पुरस्कार का लालच देकर, गोविंद गुरु को पांच गाँव देकर अपनी ओर मिलाने का प्रयास करते हैं पर गोविंद गुरु को मानव सेवा के लिए पद की जरूरत नहीं | अव्वल तो शासकों को प्रजा की समस्यायों का यथार्थ ज्ञान न था, दूजे हाकिम-अहलदार भी वास्तविकता पर पर्दा डाले हुए थे | अतः आदिवासी प्रश्नों को निरंतर नज़रंदाज़ किया जाता रहा जिसके परिणामस्वरूप विद्रोह के मामले सामने आने लगे |

आदिवासियों की दशा हर जगह एक समान थी । राजस्थान हो या गुजरात, वे शोषण की चक्की में पिस रहे थे। परंतु इस अंधकार में भी वे प्रकाश का सपना देखते हैं| मीणा जी ने बड़े विस्तार से मेवाड़ के महाराणा और आदिवासियों के बीच हुए समझौतों का उल्लेख किया है जिनमे बेगार, आदिवासियों की जंगल से बेदखली, उनका स्थानीय अधिकारियों द्वारा शोषण, उनकी औरतों की सुरक्षा जैसे मुद्दे शामिल थे । 1857 से पूर्व और पश्चात् की स्थितियों का आकलन भी उनके द्वारा किया गया है| लेकिन देसी रियासतें हों, ईस्ट इंडिया कंपनी हो या ब्रिटिश राज - आदिवासियों की पीड़ा पर किसी ने ध्यान न दिया गया, भले ही आदिवासी-स्त्रियों के मान-भंग की बात ही क्यों न हो | पितृसत्ता सदा से स्त्रियों पर अपना प्रभुत्व कायम करता आया है परन्तु आदिवासी समाज की मूल दृष्टि इससे भिन्न है| वहां स्त्री-पुरुष के बीच भेद की खाई अन्य समाजों की तरह नहीं है | मीणा जी की एक कविता है- 'आदिवासी लड़की' | कविता दो पृथक जीवन-दृष्टियों की बात करती है | बाहरी समाज के व्यक्ति को आदिवासी लड़की के पुष्ट दैहिक सौन्दर्य के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं देता क्योंकि उसके सौन्दर्यबोध की यही परिभाषा है| इस रूढ़ पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण पर प्रहार करते हुए मीणा जी लिखते हैं –

"जिन्हें तुम उन्नत उरोज कहते हो
प्यारा सा दिल है उनकी जड़ों के बीच

कंटीली झाड़ियों में फंसा हुआ
घिरा है थूहर के कुंजों से
चारों ओर पसरा विकट जंगल
जंगल में हिंसक जानवर
जहरीले सांप-गोहरे-बिच्छू
इस कैनवास में
उस लड़की की तस्वीर बनाओ कवि .."[vii]

मीणा जी की लेखनी ने आदिवासी और बाहरी समाज की स्त्री-विषयक दृष्टि के अंतर को रेखांकित किया है |

देश के विभिन्न हिस्सों में भारतीय स्वाधीनता का संघर्ष तेज़ हो रहा था | आदिवासी भी इससे अछूते न थे | गोविंद गुरु लोगों को स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग और आपसी वैमनस्य को त्याग देने की सीख देते हैं । उनके अनुसार विलायती वस्तुएं फिरंगी संस्कृति को फैलाती हैं । वे इस भेद को समझाते हैं कि अंग्रेजों और स्थानीय शासकों ने अपने आर्थिक लाभ के लिए शराब की अंधाधुंध बिक्री आदिवासी क्षेत्रों में करना आरंभ किया और जिस महुआ को आदिवासी 'कल्पवृक्ष' मानते थे, उसके प्रयोग पर प्रतिबंध लगा दिया गया, यानी दोहरा लाभ मिला अंग्रेजों को और दोहरी हानि उठानी पड़ी आदिवासियों को । प्रतिरोध करने पर दमन-चक्र तेज़ होने लगा । लेखक की पीड़ा इस बात की है कि इन अत्याचारों का इतिहास में कहीं सम्यक उल्लेख क्यों नहीं मिलता ? उपन्यास के आरंभिक पृष्ठों पर श्री हरिराम मीणा ने गुरदास राम आलम की पंक्तियां उद्धृत की है—

" क्या लिखा, किसका लिखा ,इस बात को सोच जरा
क्या तेरा लिखा मदद करता दीनों की या बलवानों की ।"[viii]

इन पंक्तियों के माध्यम से वे मानो साहित्य की जनपक्षधरता की वकालत करते हैं

तारीख 17 नवम्बर, वर्ष 1913 | मार्गशीर्ष की पूर्णिमा के अवसर पर मानगढ़ धूणी स्थल पर वार्षिक मेले का आयोजन होना था | इलाके के आदिवासीजन वहां जुट रहे थे| उधर गोविन्द गुरु की बढती प्रसिद्धि और प्रभाव से रजवाडे और ब्रिटिश अधिकारीगण गहरे तनाव में थे| ऐसे में जब यह प्रचारित किया गया कि आदिवासियों के मुखिया के रूप में गोविन्द गुरु 'आदिवासी स्टेट' की योजना बना रहे हैं, तो समस्त रजवाड़ों और अंग्रेजों की त्योरियों पर बल पड गए| स्थिति का आकलन किये बगैर मानगढ़ के पास बड़ी फ़ौज इकठ्ठा की गयी | आदिवासियों पर उपद्रव के कितने भी आरोप क्यों न लगाए जाएँ, मानगढ़-कांड को नीतिसम्मत सिद्ध नहीं किया जा सकता | गोविन्द गुरु का कथन सच की एक अलग ही तस्वीर पेश करता है | अपने साथियों को संबोधित करते हुए वे कहते हैं – "हम राज की

आदिवासी-विरोधी नीतियों का सामूहिक विरोध करते हैं | हमारा विरोध आदिवासियों में जागरती पैदा कर अन्याय को सहन नहीं करने तक सीमित रहना चाहिए | इस काम में कहीं कोई अशांति, हिंसा या उपद्रव पैदा न किया जाए, यह आप सभी भाइयों को ध्यान में रखना होगा |"[ix]

सहभागिता और सामूहिकता का सिद्धांत आदिवासी दर्शन के केंद्र में है| वीर सिद्धो-कान्हू और टंट्या मामा के ये वंशज ओढ़ी हुई सभ्यता को नहीं चीन्हते | बेशक उनके संघर्ष की गाथाओं को मुख्यधारा का इतिहास दर्ज नहीं करेगा, जैसा मानगढ़ के आदिवासियों के साथ हुआ, परंतु जंगल के पेड़, पहाड़-झरने और पुरखों की आत्माएं उनकी साक्षी हैं, लोक-गीतों में, आख्यानों में वे सदा जीवित रहेंगे |आदिवासी समाज में सहजीविता का भाव प्रमुख है। उनकी दृष्टि में धरती सबकी है, आकाश साझा है| वे इस बात को नहीं समझ पाते कि जंगलों, पर्वतों, झरनों का सौदा कैसे संभव है! जो माटी उनके पुरखों की स्मृतियों से सजी है, जिस भूमि पर वे जन्मे, जहाँ के कण-कण में उनके मिथक और पुरा-कथाएँ बिखरी पड़ी हैं, उससे उन्हें कैसे अलगाया जा सकता है ? यहां बरबस अमरीकी रेड इंडियन आदिवासियों के मुखिया सिएथल की पीड़ा याद आ जाती है।

एक आदिम जीवन पद्धति को धीरे-धीरे कुचला गया, उनकी विरासत और सहजीवन के भाव को क्षरित किया गया । पीड़ितों ने शांतिपूर्ण बातचीत और समझौते की भरपूर चेष्टा की, परंतु प्रभुवर्ग उन्हें भला अपने बराबर का इंसान मानता ही कहाँ था ! सत्ता और सैन्यबल के नशे में चूर शक्तियों ने उस भीड़ पर गोलियों की बौछार कर दी जिसमे स्त्रियाँ, बच्चे और बुजुर्ग बड़ी संख्या में शामिल थे | अब चारा ही क्या बचा था | संप-सभा को भी मोर्चा संभालना ही था | गोविंद गुरु के खंडित हृदय से निकल पड़ा —

" मानगढ़ मारी धूणी है
भूरेटिया नी मानू रे....
नी मानू रे...."[x]

भूरेटिया अर्थात फिरंगी । फिरंगी नहीं माने | और फिर आरंभ हुआ धूमाल । पूरा परिवेश गोविंद गुरु के उद्घोष से गूंज उठता है –

"हम इंसान हैं
इंसानी हकों के लिए मुहिम छेड़ी है
जिएंगे तो सन्मान से
मरेंगे तो सन्मान से !"[xi]

...और सदियों से चला आ रहा यह समर अभी शेष है ।सवाल यह है कि इस गुत्थी का हल क्या है | जल, जंगल,जमीन के जो प्रश्न तब थे, वे अब तक मुंह बाए हमारे सामने खड़े है | आज भी विश्व भर के मूल निवासी विस्थापन, प्रवास और अस्मिता के प्रश्नों से जूझ रहे हैं | सच कहें तो वैश्वीकरण और उदारीकरण

के बाद उनकी स्थिति और भी बदतर हो गई है | आज उपनिवेशवाद और पूँजीवाद नए रूप में उनका शोषण कर रहा है | वस्तुतः आदिवासी जीवन के सरोकारों पर नवीन दृष्टिकोण से विचार करने की आवश्यकता है| श्री श्यामाचरण दुबे कितना सटीक लिखते हैं कि, "आदिवासियों और गैर-आदिवासियों के बीच 'हम'/'वे' का अंतर बढ़ रहा है | इसके मूल में है हमारी दोषपूर्ण ऐतिहासिक समझ और बहुसंख्यकों की झूठी उच्च भावना | दोनों को नज़दीक आना है, किन्तु इस प्रक्रिया में आदिवासियों को आकृतिहीन बनाना ज़रूरी नहीं है |"[xii]

ऐतिहासिक प्रमाणों के आधिक्य से कहीं-कहीं कथा-क्रम भंग होता प्रतीत होता है । यथार्थपरक विवरण-बाहुल्य के कारण कल्पना तत्व की कुछ हानि हुई है । इस सन्दर्भ में श्री गंगा सहाय मीणा यहाँ तक कहते हैं कि "मानो लेखक उपन्यास नहीं लिख रहा, अभिलेखागार के दस्तावेजों को हूबहू प्रस्तुत कर रहा है|"[xiii] आदिवासी-दर्शन की दृष्टि से उन्हें इस उपन्यास में चाहे जो भी खामी नज़र आई हो, मानगढ़ बलिदान की विस्मृतप्राय ऐतिहासिक घटना के पुनः प्रकाशन के कारण वे इसका महत्व स्वीकार करते हैं|

प्रो. नवलकिशोर के अनुसार "धूणी तपे तीर मे लेखक का लक्ष्य एक स्वातंत्र्य-संघर्ष को आख्यान के जरिये इस तरह प्रस्तुत करना है कि उसकी सच्चाई असंदिग्ध बनी रहे | गोविन्द गुरु और उसके साथियों को जीवंत रूप में प्रस्तुत करने के लिए कल्पना के घोड़ों को कहानी की राह पर बेलगाम नहीं दौड़ाया गया है | इसलिए एक शुद्ध उपन्यास की अपेक्षा इससे नहीं की जानी चाहिए |"[xiv]

राजस्थान के आदिवासियों की बात करने वाले उपन्यासों में इसकी अपनी एक पहचान है | 'धूणी तपे तीर' ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर लिखित एक ऐसा उपन्यास है जिसमें आदिवासीजन की आशा-अभिलाषा, सुख-दुख और जीवन-संघर्ष के दर्शन होते हैं। मीणा जी ने लोक प्रचलित कथाओं, लोकगीतों, आख्यानों, जनश्रुतियों, ऐतिहासिक साक्ष्यों और कल्पना के सुन्दर समन्वय से आदिवासी जीवन को साकार करते हुए इस प्रश्न को रेखांकित किया है कि आखिर कब तक हाशिये के स्वर को दबाया जाता रहेगा | मानगढ़ बलिदान भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण पन्ना है, जिसे उनका शोध विस्मृति की छाया से बाहर निकाल लाया है, उनकी कलम गुमशुदा इतिहास की तलाश करती है|

सन्दर्भ-सूची

1. आदिवासी दुनिया, हरिराम मीणा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास,भारत, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति - 2016,पृष्ठ-77
2. धूणी तपे तीर, हरिराम मीणा, प्रकाशक-साहित्य उपक्रम, तृतीय संस्करण- 2014, पृष्ठ-7
3. वही , पृष्ठ- 21

4. वही ,पृष्ठ-19

5. वही , पृष्ठ-67

6. वही , पृष्ठ-90 (फुटनोट से)

7. सुबह के इंतजार में, हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2008, पृष्ठ-18

8. धूणी तपे तीर, हरिराम मीणा, प्रकाशक-साहित्य उपक्रम, तृतीय संस्करण- 2014, पृष्ठ-6

9. वही , पृष्ठ-307

10. वही , पृष्ठ-365

11. वही , पृष्ठ-371

12. परम्परा, इतिहासबोध और संस्कृति, श्यामाचरण दुबे,राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण-1995, पृष्ठ-66

13. आदिवासी चिंतन की भूमिका, गंगा सहाय मीणा, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2017, पृष्ठ-77

14. प्रो. नवलकिशोर के आलेख 'धूणी तपे तीर : इतिहास के हाशिये पर ही दर्ज मानगढ़' से साभार http://www.apnimaati.com/2013/03/blog-post_3268.html (Date of visiting the site – 10-07-2021)